8

दो विश्व युद्धों के बीच – रूसी क्रांति और महामंदी

जैसे–जैसे प्रथम विश्व युद्ध समाप्त होने लगा, वैसे–वैसे पूरे यूरोप में एक क्रांतिकारी लहर उठी जिसने पुराने राजघरानों और तानाशाही राज व्यवस्थाओं को उखाड़ फेंका। इसकी शुरुआत मार्च 1917 में रूस की क्रांति से हुई जब वहाँ के सम्राट ज़ार निकोलस को अपनी गद्दी त्यागनी पड़ी। धीरे–धीरे यह लहर जर्मनी, ऑस्ट्रिया–हंगरी, बुल्गारिया, तुर्की आदि के राजघरानों को धराशायी कर गई। रूस में अक्टूबर 1917 को एक और क्रांति हुई जिसके द्वारा वहाँ साम्यवादियों की सरकार बनी। अन्य देशों में साम्यवादी या समाजवादी सरकारें तो नहीं बनीं मगर वहाँ लोकतंत्र की स्थापना हुई। जर्मनी में वाईमर संविधान (वाईमर नामक जगह पर इस संविधान की रूपरेखा बनी थी) लागू हुआ जिसके तहत हर वयस्क, महिला व पुरुष, अमीर और गरीब सबको चुनाव लड़ने व वोट डालने का अधिकार मिला लेकिन वाईमर गणतंत्र लगातार तनाव से ग्रसित था क्योंकि एक तरफ उस पर विजयी देशों का दबाव था कि वह वरसाई संधि की शर्तों को पूरा करे और वहीं दूसरी ओर जर्मन लोगों में इसके खिलाफ ज़बरदस्त गुस्सा उफन रहा था।

चित्र 8.1 : मुस्तफा कमाल अतातुर्क (1881–1938) आधुनिक तुर्की का राष्ट्रपिता। उनके पाश्चात्य कपड़ों व तुर्की टोपी पर ध्यान दें।

तुर्की में पुराने ओटोमान सुल्तानों (जो अपने आपको मुसलमानों के खलीफा मानते थे) के राज्य की जगह मुस्तफा कमाल अतातुर्क के नेतृत्व में 29 अक्टूबर 1923 को एक लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष शासन स्थापित हुआ और औद्योगीकरण की प्रक्रिया शुरू की गई। इस्लामी धार्मिक कानून की जगह लोकतांत्रिक कानून लागू किया गया और धार्मिक मदरसों की जगह सभी बालक–बालिकाओं के लिए आधुनिक स्कूल व्यवस्था स्थापित की गई। इस प्रकार तुर्की एक इस्लामी साम्राज्य न रहा और एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में विकसित होने लगा।

सन् 1929 में विश्व भर में आर्थिक मंदी का दौर शुरू हुआ जिसके कारण विश्व के अधिकांश देशों की अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई और बेरोज़गारी तेज़ी से बढ़ी। जर्मनी में इस मंदी और वरसाई संधि के तहत हो रही हानि के कारण आर्थिक संकट गहराया। लोगों में अपनी सरकार के प्रति आक्रोश पैदा होने लगा। इसका फायदा उठाकर हिटलर और उसकी नाज़ी पार्टी सत्ता में आई और तेज़ी से विपक्षी दलों व मज़दूर संगठनों का क्रूरता के साथ दमन किया और साथ ही यहूदियों के खिलाफ एक भयानक अभियान छेड़ा। धीरे–धीरे हिटलर वरसाई संधि की शर्तों का उल्लंघन करता गया और युद्ध के माध्यम से विश्व पर आधिपत्य जमाने की तैयारियाँ शुरू कर दी।

उन्हीं दिनों ब्रिटेन और अमेरिका में एक नए तरह के राज्य की अवधारणा विकसित हुई जिसे वेल्फेयर स्टेट कहते हैं। इसमें माना गया कि राज्य लोकतांत्रिक सिद्धांतों के आधार पर चले, नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा हो और साथ में राज्य लोक कल्याण को अपनी प्रमुख ज़िम्मेदारी माने। इसके तहत सार्वभौमिक मताधिकार, राज्य से स्वतंत्र संचार माध्यम, बहुदलीय राजनीति आदि के साथ–साथ, नागरिकों को समान अवसर दिलवाना और शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोज़गार, निराश्रितों, बीमारों व वृद्धों की देखभाल आदि राज्य ने अपने ज़िम्मे में ले लिया। इस तरह के राज्य के लोक कल्याणकारी कार्य के द्वारा ब्रिटेन व अमेरिका जैसे देश सन् 1929 की मंदी से उभर पाए।

युद्ध का पुराने साम्राज्यों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा? क्या उनमें लोकतांत्रिक क्रांतियाँ सफल हुईं?

लोकतंत्र में सार्वभौमिक मताधिकार का क्या महत्व है?

भारत में राजा–महाराजाओं का शासन कब और कैसे समाप्त हुआ?

2.1 रूसी क्रांति

युद्ध के पूर्व में रूस : सन् 1914 तक रूस एक विशाल साम्राज्य बन चुका था जो यूरोप और एशिया महाद्वीपों के बीच फैला हुआ था। इसमें अनगिनत भाषा, धर्म और जातीयता के लोग अलग–अलग भागों में रहते थे जिन पर रूसी शासकों की हुकूमत थी। इस साम्राज्य में सत्ता अभिजात्य भूस्वामियों के हाथ में थी जिनका नेतृत्व वहाँ का निरंकुश शासक ज़ार निकोलस द्वितीय (ज़ार यानी सम्राट) करता था। वह रोमानोव वंश का था। साम्राज्य के अधिकांश अधिकारी भूस्वामी ही थे।

YFFHGL

सन् 1861 तक रूस में कृषकों को अर्द्धदास (सर्फ) के रूप में रखा गया था – किसान ज़मीन से बँधे थे और वे बिना भूस्वामियों की आज्ञा के दूसरे काम–धंधे नहीं कर सकते थे या गाँव छोड़कर नहीं जा सकते थे। जब भूस्वामी अपनी ज़मीन किसी को बेचता था या देता था, तब ज़मीन के साथ किसानों को भी हस्तांतरित करता था। 1861 में ज़ार की एक घोषणा के द्वारा किसानों को इस प्रथा से मुक्ति तो

चित्र 8.2 : रूसी किसान परिवार 1900 के आसपास

चित्र 8.3 : रूस के एक पुराने कारखाने के अन्दर का दृश्य

मिली मगर अब भी ज़मीन भूस्वामियों के पास ही थी और किसानों को यह ज़मीन ऊँचे किराए पर मिलती थी। ज़ार की पहल पर भूस्वामियों ने कुछ ज़मीन (जो आम तौर पर घटिया किस्म की थी) किसानों को दी मगर उसके लिए किसानों को बहुत बड़ी रकम चुकानी पड़ी। शासन की ओर से यह रकम भूस्वामियों को चुकायी गई और किसानों को इसे किश्तों में पटाना था। जब तक वे इसे पटा नहीं देते उन्हें गाँव छोड़कर जाने की अनुमति नहीं थी। सन् 1917 तक कई पीढ़ियाँ बीतने पर भी किसान यह ऋण चुकाते रहे। कुल मिलाकर 1861 के सुधारों से भूस्वामी ही लाभान्वित हुए और किसान कानूनी रूप से आज़ाद तो हुए मगर आर्थिक रूप से और बुरे हालातों में फँस गए। लेकिन रूस में किसी प्रकार के लोकतंत्र या अभिव्यक्ति की आज़ादी के न होने के कारण किसानों के पास अपनी बात कहने या मनवाने के लिए कोई साधन नहीं थे। अभिजात्य भूस्वामी व जार मिलकर निरंकुश शासन चलाते थे जो एक बहुत सीमित वर्ग को ही लाभ पहुँचाता था। इस तरह आम किसानों की हालात सुधरने की जगह लगातार बिगड़ती गई।

आजीविका की खोज में कई किसान शहरों में बन रहे कारखानों में मज़दूरी करने गए और कई किसान जार की सेना में भर्ती हुए। इस तरह रूस में किसानों, मज़दूरों व सैनिकों के बीच एक गहरा संबंध बना।

गुलामों और अर्द्धदासों की दशा में क्या समानता और अन्तर थे? कक्षा में चर्चा करें।

सन् 1861 में अर्द्धदासता समाप्त करने पर वास्तव में किसे लाभ पहुँचा होगा?

उद्योग और मज़दूर : 1880 के बाद रूसी शासक आधुनिक उद्योगों के महत्व को समझने लगे क्योंकि वे अपनी सेना के लिए आधुनिक हथियार व रेलमार्ग चाहते थे जो बड़े कारखानों में ही बनते थे। अतः जारशाही राज्य ने रूस में उद्योगों को लगाने की पहल की। ब्रिटेन या फ्रांस में जहाँ मध्यम वर्ग के धनी व्यापारी आदि छोटे उद्योग लगाते थे, रूस में राज्य ने विदेशी निवेशकों को बड़े कारखाने लगाने के लिए आमंत्रित किया और उन्हें कई रियायतें दीं। इस कारण रूस का औद्योगीकरण भी अभिजात्य राज्य के नियंत्रण में ही रहा और वहाँ एक स्वतंत्र मध्यम वर्ग या शक्तिशाली पूँजीपति वर्ग का विकास नहीं हो सका। लेकिन बढ़ते औद्योगीकरण के साथ–साथ शहरीकरण भी हुआ। वहाँ बड़ी संख्या में औद्योगिक मज़दूर रहने लगे जिन्हें बहुत ही कम वेतन पर दयनीय हालातों पर काम करना पड़ता था। रूस में जो कारखाने बने वे बहुत बड़े थे जिनमें हज़ारों मज़दूर एक साथ काम करते थे। इस कारण मज़दूरों में आपस में संगठन बनाने और अपनी माँगों के लिए एक साथ लड़ने की क्षमता बनी। ज़्यादातर मज़दूर गाँव के किसान परिवारों से थे और इस कारण गाँव की समस्याओं से गहरे रूप में जुड़े हुए थे।

जर्मनी के औद्योगीकरण और रूस के औद्योगीकरण में क्या समानताएँ व अन्तर थे?

अगर किसी देश का मध्यम वर्ग कमज़ोर रहता तो वहाँ की राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ता? कक्षा में चर्चा करें।

किस तरह के कारखानों में मज़दूरों के संगठन अधिक प्रभावशाली होंगे – छोटे कारखानों में या बड़े कारखानों में? कारण सहित चर्चा करें।

गाँव और किसानों से संबंध होने से मज़दूरों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा? क्या आप इसके उदाहरण अपने आसपास देख सकते हैं?

सन् 1905 की घटनाएँ– ज़ारशासित रूस में लोकतंत्र और लोकतांत्रिक अधिकार नहीं थे और लोगों को सरकार की खुलकर आलोचना करने या अपनी समस्याओं को लेकर आंदोलन करने के अधिकार नहीं थे। चूँकि राज्य का विरोध खुलकर नहीं हो सकता था, जगह–जगह गुप्त संगठन बने जो गुप्त रूप से लोगों को संगठित करते थे और गुप्त आंदोलन चलाते थे। समय–समय पर यह आतंकी हमलों का रूप लेता था। गुप्त संगठनों में रूस की समाजवादी व साम्यवादी पार्टी, किसानों की क्रांतिकारी पार्टी और उदारवादियों की पार्टियाँ प्रमुख थीं। सन् 1905 में रूस और जापान का युद्ध हुआ जिसमें रूस इस छोटे एशियाई देश से हार गया। इस कारण ज़ार का दबदबा कमज़ोर हुआ। उसी समय रूस के विभिन्न शहरों में मज़दूर अपने काम के हालातों के विरुद्ध और लोकतंत्र के लिए हड़ताल करने लगे। जब पीटर्सबर्ग शहर (राजधानी) में मज़दूर शान्तिपूर्वक जुलूस निकालकर ज़ार के महल के सामने अपनी गुहार सुनाने के लिए इकट्ठा हुए तो उन पर गोली चलाई गई और हज़ार से अधिक लोग मारे गए। इससे क्रुद्ध होकर पूरे रूस में विरोध प्रदर्शन हुए। इनको देखते हुए ज़ार ने कई राजनैतिक सुधारों की घोषणा की। रूस में भी चुनी हुई संसद (जिसे डूमा कहा गया) की स्थापना हुई। लेकिन चुनाव एक जटिल अप्रत्यक्ष तरीके से होता था ताकि डूमा में अधिकतर संपत्तिवाले ही पहुँचे। ज़ार डूमा के किसी भी प्रस्ताव को ठुकरा सकता था। उसका अधिवेशन भी ज़ार अपनी सुविधानुसार बुलाता था। इस घोषणा के साथ ही बहुत क्रूर तरीकों से आंदोलन को दबाया गया जिसके चलते दस हज़ार से अधिक लोग मारे गए और 75,000 से अधिक लोगों को जेलों में बंद कर दिया गया या घोर ठंडी जगह साइबेरिया में कालापानी की सज़ा दी गई।

1905 के डूमा को क्या आप वास्तविक लोकतांत्रिक संसद मानेंगे? कारण सहित चर्चा करें।

युद्ध और सन् 1917 की क्रांतियाँ

दमनचक्र और सीमित सुधार के चलते कुछ वर्ष शान्ति बनी रही मगर सन् 1912 के बाद फिर से मज़दूरों की हड़ताल और किसानों के विद्रोह शुरू हो गए। इसी बीच 1914 में प्रथम विश्व युद्ध में रूस सम्मिलित हुआ। इसके तुरन्त बाद रूस में भी देशभक्ति की लहर उठी और लोग ज़ार का समर्थन करने लगे। लेकिन दो वर्षों के अन्दर लगातार हार और युद्ध की विभीषिका सहते हुए रूस के सैनिक, मज़दूर और किसान थक गए। चारों ओर '*ज़मीन, रोटी और शान्ति*' की माँग उठने लगी। 23 फरवरी 1917 (रूस में प्रचलित कैलेंडर और आधुनिक कैलेंडर के बीच 13 दिनों का अन्तर था। वास्तव में यह घटना हमारे कैलेंडर के अनुसार 8 मार्च को घटी थी।) को महिला दिवस पर पेट्रोग्राड (राजधानी पीटर्सबर्ग का नया नाम) शहर की महिला मज़दूरों ने शान्ति और रोटी की माँग करते हुए एक जुलूस निकाला।

इसके तुरन्त बाद पूरे शहर में इन माँगों के समर्थन में मज़दूरों व सैनिकों के जलूस निकलने लगे और सैनिकों व पुलिस ने प्रदर्शनकारियों के विरुद्ध कार्यवाही से मना कर दिया। हर कारखाने में मज़दूरों की सभाएँ हुईं जिनमें उन्होंने रूस के हालातों पर चर्चा की और अपने प्रतिनिधि चुनकर शहर में मज़दूर सभा गठित करने के लिए भेज दिया। इन सभाओं को सोवियत (पंचायत जैसा एक रूसी शब्द) कहा जाता था। कारखानों के सोवियतों ने

चित्र 8.4 : फरवरी 1917 में रूस की महिलाओं का एक प्रदर्शन। ये महिलाएँ खुश दिख रही हैं। वे किस बात से खुश हो रही होंगी?

चित्र 8.5 : 1917 में एक कारखाने में सोवियत की बैठक

कारखानों का संचालन मालिकों से अपने हाथ में ले लिया। वे खुद निर्णय लेते और उनका क्रियान्वयन करते।

उनके प्रतिनिधियों से अपेक्षा थी कि वे सोवियत सदस्यों के विचारों के अनुरूप शहर सोवियत के कारखाने में काम करें, अन्यथा उन्हें बदलकर किसी और को प्रतिनिधि नियुक्त किया जाता था। इस तरह पेट्रोग्राड शहर का सोवियत बना। इसी तरह सैनिकों ने अपनी–अपनी टुकड़ी के सोवियत बनाए और अपने अफसरों को कैद कर दिया या उन्हें सैनिकों के कहे अनुसार चलने पर मजबूर किया। गाँवों में किसान भी किसानों के सोवियत बनाने लगे और भूस्वामियों के महलों तथा दुकानों को लूटने लगे। इस प्रकार चन्द दिनों में ज़ारशाही की सत्ता समाप्त हो गई और हर जगह लोग खुद की मर्ज़ी से चलने लगे। देखते–देखते पूरे देश में दो–चार दिनों में ही पुराने शासन तंत्र का अंत हो गया और लोगों ने अपने–अपने तरीके से सत्ता अपने हाथों में ले ली।

चित्र 5 और 6 को ध्यान से देखें और बताएँ कि क्या इन बैठकों में मज़दूर गंभीरता से भाग ले रहे हैं या उदासीन दिख रहे हैं? इसका वहाँ की राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ता?

क्या आप इन दो चित्रों में किसी महिला को पहचान पा रहे हैं? अगर इनमें अधिक महिलाएँ होतीं तो घटनाक्रम में क्या अन्तर आता?

सोवियत और संसद में आप क्या अन्तर कर सकते हैं?

चित्र 8.6 : मार्च 1917 में पेट्रोग्राड सोवियत की बैठक

ज़ार का गद्दी छोड़ना – पेट्रोग्राड सोवियत और वहाँ के जनसामान्य के आक्रोश को देखते हुए डूमा ने ज़ार से आग्रह किया कि वह गद्दी छोड़ दे और डूमा को नया मंत्रीमंडल गठित करने की अनुमति दे। ज़ार की सेना में भी विद्रोह फैल गया जिसे देखते हुए ज़ार ने 2 मार्च 1917 (वर्तमान कैलेंडर के अनुसार 15 मार्च) को गद्दी त्याग दी। इस घटनाक्रम को फरवरी क्रांति के नाम से जाना जाता है।

डूमा के मध्यमवर्गीय सदस्यों ने एक मंत्रिमंडल का गठन किया जिसे अस्थाई सरकार कहा गया। यह अस्थाई इसलिए था क्योंकि सभी चाहते थे कि सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर चुनी गई संविधान सभा गठित हो जिसके नियमानुसार स्थाई सरकार बनेगी। लेकिन यह अस्थाई सरकार सोवियत पर पूरी तरह निर्भर थी क्योंकि सोवियत ही वास्तव में हर क्षेत्र पर नियंत्रण कर रहे थे। उन दिनों पेट्रोग्राड सोवियत का नेतृत्व तीन–चार समाजवादी दलों के प्रतिनिधि कर रहे थे। वे यह मानते थे इस क्रांति का नेतृत्व मध्यम वर्ग को निभाना है जिसे देश में लोकतंत्र, भूमिसुधार और शान्ति लाना है। वे मानते थे कि सोवियतों की भूमिका मध्यम वर्ग के लोगों को पीछे हटने से या पुराने शासकों की वापसी को रोकना है।

चित्र 8.7 : 1917 में एक सभा को संबोधित करते हुए वी आई लेनिन

लेनिन और अक्टूबर क्रांति

इस बीच यह स्पष्ट हो रहा था कि अस्थाई सरकार युद्ध जारी रखना चाहती है और वह ज़मीन के वितरण को लेकर गंभीर नहीं है। न ही वह कालाबाज़ारी पर रोक लगा पायी और न ही सबको रोटी उपलब्ध करा पा रही थी। विभिन्न बहाने बनाकर वह संविधान सभा का गठन भी नहीं कर रही थी। इस बीच साम्यवादी व्लादिमीर लेनिन के नेतृत्व वाली बोल्शेविक पार्टी ने मज़दूरों व सैनिकों के बीच अस्थाई सरकार के विरुद्ध प्रचार किया और उन्हें उसके खिलाफ विद्रोह करने के लिए उकसाया। लेनिन का मानना था कि मध्यम वर्ग रूस में कमज़ोर होने के कारण वह लोकतंत्र स्थापित नहीं कर पाएगा और न ही वह किसानों को ज़मीन दिलवाएगा। इसलिए सोवियत जिनके पास वास्तविक शक्ति थी, को सत्ता हथिया लेना चाहिए और इसका नेतृत्व बोल्शेविक पार्टी को करना चाहिए। शुरू में मज़दूर व सैनिक उनके पक्ष में नहीं थे मगर जैसे–जैसे समय बीतता गया और अस्थाई सरकार की कमज़ोरियाँ उजागर हुईं तथा युद्ध में हार का सामना करना पड़ रहा था तो वे बोल्शेविकों के विचारों को अपनाने लगे।

हमने पहले देखा था कि किस प्रकार रूस के किसान, मज़दूर और सैनिक आपस में जुड़े हुए थे और एक–दूसरे की समस्याओं के प्रति सचेत थे। इस कारण उनके बीच एक साझा समझ बनना और उसके लिए लड़ना स्वाभाविक था।

अक्टूबर 1917 (7 नवंबर 1917) को बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में पेट्रोग्राड सोवियत ने अस्थाई सरकार को हटाकर क्रांतिकारी सरकार का गठन किया। अगले दिन पूरे रूस के सोवियतों की सभा में लेनिन ने नई सरकार की घोषणा की और दो महत्वपूर्ण ऐलान किए – पहला, *'शान्ति संबंधित ऐलान'* जिसमें युद्ध विराम और लोकतांत्रिक शान्ति की अपील की गई और दूसरा, *'ज़मीन संबंधित ऐलान'* जिसमें भूस्वामियों की ज़मीन का राष्ट्रीयकरण और किसानों को ज़मीन वितरण का निर्णय था। हर गाँव के गरीब किसानों की समितियों

को वहाँ के भूस्वामियों की ज़मीन को आपस में बाँटने का अधिकार दिया गया। दूसरी ओर कारखानों में मज़दूरों की समितियों को कारखानों के संचालन में भागीदारी दी गई। चन्द ही दिनों में हर जगह पुरानी प्रशासन व्यवस्था, नौकरशाह और पुलिस की जगह सोवियतों ने शासन व्यवस्था अपने हाथों में ले ली। सोवियत शासन ने यह सुनिश्चित करने की कोशिश की कि सभी शहरवासियों को खाने के लिए रोटी और रहने के लिए आवास मिले।

इसके साथ ही रूस ने ऐलान किया कि ज़ारशाही के तहत जो भी राष्ट्र रूसी साम्राज्य द्वारा दबाए गए थे वे अब स्वतंत्र हैं और अपनी मर्ज़ी से तय कर सकते हैं कि वे रूस के साथ रहना चाहते हैं या स्वतंत्र होना चाहते हैं। फिनलैंड, लटेविया, एस्टोनिया, यूक्रेन जैसे देश इस प्रकार स्वतंत्र हुए।

जहाँ तक विश्व युद्ध को समाप्त करने की बात थी, रूस की अपील के बावजूद कोई देश शान्ति समझौते के लिए तैयार नहीं हुआ। ऐसे में रूस ने जर्मनी से मार्च 1918 में एक समझौता करके युद्ध समाप्त किया। लेकिन इस संधि के द्वारा रूस को बहुत अधिक ज़मीन जर्मनी को देनी पड़ी।

रूसी क्रांति तीन प्रमुख माँगों को लेकर शुरू हुई थी। क्या आपको लगता है कि सन् 1918 तक ये पूरी हो पाईं? अगर हाँ, तो किस हद तक?

सन् 1918 से 1922 के बीच रूस के पुराने भूस्वामी और सेनापतियों ने नई सरकार के विरुद्ध गृहयुद्ध छेड़ा और उन्हें ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका आदि देशों का समर्थन भी मिला। इन देशों की सरकारें यूरोप में साम्यवादी विचारों के फैलने से घबरायी हुईं थीं। लेकिन 1922 तक रूस की सरकार इन्हें हरा पाई। इसी बीच पुराने साम्राज्य के कई हिस्से जो स्वतंत्र हुए थे अब रूस के साथ हो लिए और यू एस एस आर (सोवियत समाजवादी देशों का संघ) की स्थापना हुई।

स्तालिन : 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद जोसेफ स्तालिन ने नेतृत्व संभाली और कुछ ही वर्षों में वह साम्यवादी पार्टी और सोवियत रूस का सर्वशक्तिमान नेता बना। नेतृत्व सम्भालते ही उसकी नीतियों का विरोध करने वाले कई नेताओं को मार डाला गया। स्तालिन 1953 में अपनी मृत्यु तक सोवियत साम्यवादी पार्टी और सोवियत संघ का तानाशाह बना रहा।

औद्योगीकरण : क्रांति के बाद रूस में सारे बैंकों, कारखानों व खदानों को शासकीय संपत्ति घोषित किया गया और निजी संपत्ति खत्म की गई थी। अब उनका संचालन राज्य द्वारा किया जाने लगा। 1924 के बाद सोवियत रूस के सामने आर्थिक विकास और औद्योगीकरण की चुनौती थी। युद्ध, क्रांति और गृहयुद्ध से ध्वस्त आर्थिक व्यवस्था को विकास की पटरी पर लाना था। 1928 से सोवियत रूस में नियोजित विकास की शुरुआत हुई जिसमें औद्योगीकरण पर विशेष ज़ोर था। लेकिन इसके लिए धन और तकनीकी विशेषज्ञों का अभाव था। ऐसे में पहले विदेशों से विशेषज्ञ बुलाए गए और उनकी मदद से उद्योग निर्मित किए जाने लगे। जहाँ तक धन और पूँजी का सवाल

चित्र 8.8 : रूस के औद्योगीकरण का एक दृश्य – मैग्निटागार्सक नामक जगह पर इस्पात कारखाना लगभग 1936

था, यह किसी विदेशी स्रोत से उपलब्ध नहीं था और रूस को अपने स्रोतों से व्यवस्था करनी पड़ी। इसके लिए जितनी भी बचत उपलब्ध थी उसे उद्योगों में झोंका गया, मज़दूरों का वेतन कम रखा गया और किसानों पर कर लगाकर अतिरिक्त निवेश की व्यवस्था की गई। यह माना गया कि उद्योगों के विकास से बाद में मज़दूरों व किसानों को फायदा मिलेगा। 1928 के बाद रूस में औद्योगीकरण तेज़ हुआ और इसमें भारी उद्योगों (लोहा–इस्पात, बिजली, मशीन उत्पादन आदि) पर विशेष ज़ोर था। 1940 तक सोवियत संघ एक ताकतवर औद्योगिक देश बन गया।

कृषि का सामूहीकरण : 1917 के बाद भूस्वामियों की ज़मीन किसानों के बीच वितरित होने से अधिकांश कृषक मध्यम दर्जे के किसान बन गए और कुछ बड़े किसान भी थे लेकिन खेती के तरीके अभी भी पारंपरिक थे और उत्पादन कम था। इस बात को देखते हुए स्तालिन ने कृषि क्षेत्र में भारी बदलाव लाने की पहल की। इसके तहत किसानों से कहा गया कि वे अपने–अपने खेतों को मिलाकर विशाल सामूहिक फार्म बनाएँ ताकि बड़े पैमाने में खेती की जा सके और खेतों में मशीनों व अन्य आधुनिक तरीकों का उपयोग किया जा सके। अधिकांश छोटे और मध्यम किसान इसके लिए तैयार हुए मगर ज़्यादातर बड़े किसान और कुछ मध्यम किसानों ने इसका विरोध किया। विरोध करने वालों पर ज़ोर–ज़बरदस्ती की गई और वे लाखों की संख्या में गिरफ्तार किए गए, कालापानी भेजे गए या मार डाले गए। इस ज़ोर–ज़बरदस्ती के कारण कुछ वर्ष रूस की कृषि संकटग्रस्त रही। फलस्वरूप 1932–34 के बीच भीषण अकाल पड़ा और लाखों लोग भुखमरी के कारण मरे लेकिन 1936 तक कृषि सामूहीकरण पूरा हुआ और रूस में निजी खेती लगभग समाप्त हो गई। 1937 के बाद कृषि का तेज़ी से विकास हुआ और वह औद्योगीकरण का फायदा उठाते हुए अपनी उत्पादकता को तेज़ी से बढ़ा सका।

ब्रिटेन में औद्योगीकरण के लिए धन कहाँ से मिला था? क्या औद्योगीकरण के लिए अन्य किसी स्रोत से पूँजी मिल सकती थी?

कृषि के विकास के लिए क्या बड़े जोतों की आवश्यकता है? अगर छोटे जोत हों तो उनमें मशीनीकरण में क्या समस्याएँ आतीं?

रूस के बड़े किसानों ने सामूहिक फार्म का विरोध क्यों किया होगा?

क्या सामूहीकरण किसानों की सहमति से धीरे–धीरे किया जा सकता था?

क्रांति के बाद सोवियत रूस के विकास को लेकर काफी विवाद रहा है और उसके विरोधाभासों पर कई इतिहासकारों ने ध्यान आकृष्ट किया है। एक ओर पहली बार इतिहास में अभिजात्य भूस्वामियों, पूँजीपतियों, व्यापारियों व शाही दरबारियों के बिना गरीब मज़दूरों व किसानों ने एक नए समाज की रचना की। इस समाज में सभी को भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि ज़रूरी सुविधाओं की पहुँच समान रूप से बनी। बेरोज़गारी लगभग समाप्त हो गई और सबको काम मिला। 1929–32 के बीच पूँजीवादी देशों में जो भीषण आर्थिक मंदी आई, उसका रूस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। महिलाओं को समाज में समान अधिकार प्राप्त हुआ। निरक्षरता में भारी कमी आई और सबके लिए समान शिक्षा की व्यवस्था की गई जिसमें विषयों की पढ़ाई के साथ–साथ शारीरिक श्रम द्वारा उत्पादक कार्य पर भी ज़ोर दिया गया।

रूस के अधिकांश पड़ोसी देश जो पूँजीवादी थे, लगातार इसी प्रयास में रहे कि वह सफल न हो और रूस के विकास में तरह–तरह की बाधाएँ डालते रहे। लेकिन इसके बावजूद सोवियत रूस अपने आपको आर्थिक रूप से मज़बूत कर सका और 1940 तक एक आधुनिक शक्ति के रूप में उभरा।

लेकिन जो राजनैतिक व्यवस्था सोवियत रूस में बनी उसमें बहु–दलीय प्रणाली की जगह एक साम्यवादी दल को ही मान्यता प्राप्त थी। इस कारण लोगों के सामने राजनैतिक विकल्प मौजूद नहीं थे। इसके अलावा

वहाँ शासन की आलोचना करने तथा वैकल्पिक सोच प्रस्तुत करने पर भारी रोक लगी थी और अक्सर शासन की नीतियों के विरोध करने वाले चाहे वे साम्यवादी दल के क्यों न हों को देशद्रोह के आरोप में गिरफ्तार किया जाता था और मार डाला जाता था। इस तरह जहाँ एक ओर गरीबों को राजनीति में भाग लेने का मौका मिला वहीं उनके पास विकल्प न होने के कारण लोकतंत्र का पूरा विकास नहीं हो पाया।

सोवियत क्रांति का पूरे विश्व पर गहरा असर पड़ा। दूर–दराज़ के देशों में और खासकर उपनिवेशों में स्वतंत्रता और गरीबों के अधिकारों के लिए लड़ने वालों को इससे प्रेरणा मिली और वे भी रूस की राह पर चलने का प्रयास करने लगे। रूस की साम्यवादी पार्टी के नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संगठन बनाया गया और हर देश में उस तरह की पार्टियों का निर्माण हुआ। इनके आंदोलनों के दबाव से हर देश में मज़दूरों के कल्याण व किसानों को ज़मीन पर अधिकार देने के लिए कानून बने और ठोस व्यवस्थाएँ बनीं।

अगर आपके अपने गाँव या शहर के गरीबों के हितों की व्यवस्था करनी है तो क्या–क्या करना होगा?

आपने लोकतंत्र में दलों की भूमिका के बारे में पढ़ा है। क्या आपको लगता है बहु–दलीय प्रणाली लोकतंत्र के लिए ज़रूरी है? कारण सहित चर्चा करें।
क्या स्वतंत्र अभिव्यक्ति और अपने विचार रखने का अधिकार न हो तो किसी भी लोकतंत्र पर उसका क्या असर होगा?
क्या शासन की नीतियों की आलोचना करने वालों को गिरफ्तार करना या मार डालना ज़रूरी या उचित हो सकता है?

2.2 भीषण आर्थिक मंदी और कल्याणकारी सरकार

पिछले खण्ड में हमने देखा कि रूस ने पूँजीवादी औद्योगीकरण की जगह राज्य नियंत्रित औद्योगीकरण को अपनाया और संसदीय लोकतंत्र की जगह सोवियत शैली का लोकतंत्र स्वीकारा। वहाँ बहुदलीय चुनाव और वैयक्तिक लोकतांत्रिक अधिकारों को भी नहीं माना गया। उसी समय ब्रिटेन व अमेरिका में संसदीय लोकतंत्र, बहुदलीय चुनाव और वैयक्तिक लोकतांत्रिक अधिकारों पर अधिक ज़ोर था। यह व्यवस्था बाज़ार आधारित पूँजीवादी औद्योगीकरण पर खड़ी थी और उसमें यह मान्यता थी कि लोकतांत्रिक सरकार को आर्थिक मामलों में दखल नहीं देना चाहिए। अर्थव्यवस्था को पूरी तरह बाज़ार पर छोड़ देना चाहिए। इस विचार को बहुत बड़ा धक्का सन् 1929 की भीषण मंदी से लगा और अपने आपको बदलने पर विवश हुआ।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद यह आशा की गई थी कि सभी देशों में तेज़ी से आर्थिक विकास होगा और 1919 के बाद ऐसा हुआ भी। लेकिन यह विकास 1923 के बाद कुछ थम–सा गया और 1929 में पूरी पूँजीवादी दुनिया में भीषण आर्थिक मंदी आई जो 1933 तक यानी चार साल तक बनी रही। हालाँकि उसके बाद फिर विकास का दौर शुरू हुआ लेकिन 1939 तक मंदी का असर बना रहा।

चित्र 8.9 : मुफ्त कॉफी और सूप के लिए हज़ारों बेरोज़गार कतार में खड़े हैं।

'आर्थिक मंदी' यानी क्या? पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में हमेशा एक जैसा विकास नहीं होता है। उसमें लगातार तेज़ी और मंदी के दौर एक के बाद एक आते रहते हैं।

चित्र 8.10 : एक दीवालिया बैंक के सामने अपना जमा पैसे निकालने के लिये खड़ी भीड़

तेज़ी के समय पूँजी का निवेश बढ़ता है, उत्पादन बढ़ता है, मज़दूरों को काम और वेतन भी अधिक मिलता है। इस कारण वे अधिक चीज़ें खरीद पाते हैं और चीज़ों की माँग और कीमतें बढ़ती हैं। इस कारण और अधिक पूँजी निवेश होता है... इस तरह तेज़ी का चक्र चलते रहता है। इस खुशनुमा दौर के अंत में अकसर चीज़ों का अत्यधिक उत्पादन हो जाता है और वे बिक नहीं पाती हैं और माल की कीमत कम होने लगती है। जब ऐसी परिस्थिति में कोई अप्रत्याशित आर्थिक घटना घटती है तो लोगों का विश्वास डगमगा जाता है और मंदी का खतरा बढ़ जाता है। पूँजीपति उत्पादन कम कर देते हैं जिससे मज़दूरों को काम कम मिलता है और वे बेरोज़गारी का शिकार हो जाते हैं। अब वे और कम सामान खरीद पाते हैं। इसके चलते मंदी और गहरा जाती है। आम तौर पर आर्थिक मंदी का असर कम समय के लिए रहता है और फिर से तेज़ी की आशा रहती है। लेकिन 1929 की मंदी का असर कई साल तक रहा और पूरे विश्व को हिलाकर रख दिया।

सन् 1925 से ही अमेरिका में मंदी के आसार उभरने लगे थे। प्रथम विश्व युद्ध के समय जब यूरोप में कृषि प्रभावित रही अमेरिका के किसान ने उत्पादन खूब बढ़ाया जिसके लिए वे बैंकों से बहुत उधार भी ले रखे थे। लेकिन युद्ध की समाप्ति के बाद यूरोप में कृषि फिर से स्थापित हुई और उसने अमेरिका से अनाज खरीदना कम कर दिया। इस कारण अमेरिका में कृषि उपज की कीमतें घटने लगीं और किसान परेशान होने लगे। वे बैंकों की किश्त नहीं चुका पा रहे थे।

'भीषण मंदी' की शुरुआत 29 अक्टूबर 1929 के अमेरिकी शेयर बाज़ार में भारी गिरावट से हुई। शेयर बाज़ार में विभिन्न कंपनियों की हिस्सेदारी या *'शेयर'* खरीदे–बेचे जाते हैं। अगर कंपनी मुनाफा कमा रही हो तो अधिक लोग उसके हिस्से खरीदेंगे और उनका दाम बढ़ जायेगा। अगर घाटा हो रहा हो तो जिनके पास उसके हिस्से हैं वे भी बेचने लगेंगे और खरीदने वाले नहीं होंगे। ऐसे में उस कंपनी के शेयर की कीमत कम होने लगेगी। अक्टूबर 1929 में अमेरिका के निवेशकों ने पाया कि कोई कंपनी मुनाफा नहीं कमा रही थी और सभी घाटे में चल रहे थे। अचानक 29 अक्टूबर को सभी कंपनियों के हिस्सों की कीमत तेज़ी से घटती गई। जिनके पास शेयर थे वे बेचने के लिए आतुर थे मगर खरीददार नहीं थे। बैंकों ने जो उधार दे रखे थे वे वापस नहीं हो रहे थे और बैंकों के पास नगद की कमी पड़ गई। ऐसे में जिन लोगों ने बैंकों में पैसे रखे थे वे अपना पैसा निकालने लगे, मगर बैंकों के पास देने के लिए पैसे नहीं थे। बैंकों का दीवालिया निकल गया और जिन्होंने उनमें पैसे डाल रखे थे उनकी जमा पूँजी गायब हो गई।

इसका कारण यह था कि अमेरिका में 1925 से 1929 तक जो तेज़ी हुई थी उस दौर में किसानों के उपज की कीमत या मज़दूरों का वेतन नहीं बढ़ा पर पूँजीपतियों का मुनाफा अत्यधिक मात्रा में बढ़ा। इस कारण जन सामान्य की खरीदने की क्षमता कम थी मगर उत्पादन बढ़ता गया। नतीजा यह हुआ कि माल की माँग कम होती गई और माल गोदामों में बन्द रहे। माल न बिकने के कारण कीमतों में लगभग 32 प्रतिशत गिरावट आई। इसको देखते हुए उद्योगपति उत्पादन कम करने लगे जिस कारण मज़दूरों की छटनी होने लगी। लगभग 27 प्रतिशत मज़दूर बेरोज़गार हो गए। कारखानों में कच्चे माल की माँग कम होने और मज़दूरों की बेरोज़गारी के कारण कृषि उपज की माँग और कीमतें गिरने लगी। किसानों को लागत से भी कम कीमत पर अपनी उपज बेचनी पड़ी और वे बरबाद हो गए और साथ में वे कंपनियाँ भी जो उन पर निर्भर थीं। औद्योगिक और कृषि संकट के चलते राष्ट्रीय आय कम हो गई।

चित्र 8.11 : एक बेरोज़गार परिवार और चिन्ताकुल माँ। बेरोज़गारों की दशा को चित्रित करने वाला एक बहुत प्रसिद्ध फोटो।

चित्र 8.12 : एक किसान के फार्म पर सूचना: 'खाली करने के लिए बेचना है, घर के फर्नीचर भी'

अमेरिका के संकट ने पूरे विश्व को कैसे प्रभावित किया? उन दिनों अमेरिका विश्व का सबसे बड़ा व्यापारिक देश था। वह दुनिया का सबसे बड़ा निर्यात करने वाला देश था और ब्रिटेन के बाद सबसे बड़ा आयात करने वाला देश था। वह युद्ध से उभर रहे यूरोप का सबसे बड़ा कर्ज़दाता और निवेशक था। फलस्वरूप पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था का ताना–बाना अमेरिका पर निर्भर था।

अपने आर्थिक संकट के कारण अमेरिका ने जर्मनी, ब्रिटेन आदि को उधार देना कम कर दिया। अपने कृषि और उद्योगों को बचाने के लिए अमेरिका ने दूसरे देशों से आयात कम कर दिया। 1930 से देखते–देखते अमेरिका का संकट पूरे विश्व पर छा गया, विशेषकर उन सभी देशों पर जो आपस में व्यापार और निवेश से बँधे हुए थे। 1929 से 1933 के बीच अंतर्राष्ट्रीय व्यापार 60 प्रतिशत कम हो गया। दुनिया भर के किसान जो व्यापारिक फसल उगाते थे बर्बाद हो गए क्योंकि उनकी उपज के लिए कोई खरीददार नहीं रहे। अमेरिका और अन्य कई देशों के किसान अपनी ज़मीन बेचकर शहरों की तरफ कूच कर गए। लेकिन शहरों में भी कोई काम नहीं था। ब्रिटेन में 23 प्रतिशत लोग बेरोज़गार थे जबकि जर्मनी में 44 प्रतिशत लोगों के पास काम नहीं था।

किसी देश में आम जनता की माल खरीदने की क्षमता किस बात से निर्धारित होती है?

मज़दूरों के वेतन बढ़ने से अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव होगा? फिर भी कारखानों के मालिक उन्हें कम वेतन क्यों देना चाहते होंगे?

मंदी का किसानों पर क्या प्रभाव पड़ा?

अमेरिका में आया संकट पूरे विश्व को कैसे प्रभावित किया?

इस भीषण मंदी का प्रभाव जर्मनी पर इतना अधिक क्यों पड़ा? क्या आप कोई कारण सोच सकते हैं?

भीषण मंदी का प्रभाव सोवियत रूस पर सबसे कम पड़ा और वहाँ उसी समय प्रथम पंचवर्षीय योजना के तहत तेज़ी से औद्योगिक विकास हो रहा था। इसके दो प्रमुख कारण थे – पहला यह कि रूस उन दिनों विश्व आर्थिक व्यवस्था से बहुत कम जुड़ा था और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर था। इस कारण विश्व बाज़ार की मंदी का उस पर प्रभाव नहीं था। दूसरा कारण यह था कि रूस में समाजवादी सिद्धांतों के अनुसार सरकार की केन्द्रीय योजना के अनुरूप आर्थिक विकास किया जा रहा था जिसमें बाज़ार के उतार–चढाव का कोई दूरगामी असर नहीं था।

आर्थिक विकास और लाभ कमाने के लिए विश्व बाज़ार में जुडकर अन्य देशों से व्यापार करना आवश्यक है। लेकिन ऐसा करने पर वह देश दूसरे देशों के बाज़ार के उतार–चढ़ाव से बुरी तरह प्रभावित हो सकता है। क्या विकास का कोई और रास्ता हो सकता है?

चित्र 8.13 : 'काम या वेतन' अश्वेत और गोरे मज़दूरों का मिलकर बेरोज़गारी के विरुद्ध जुलूस। क्या इस जुलूस में कोई महिलाएँ भी दिख रही हैं?

लोगों के आंदोलन और शासन की पहल

1929 की भीषण मंदी के कारण जगह–जगह त्रस्त लोगों के आंदोलन हुए और बहुत तेज़ी से लोगों का पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से मोहभंग हुआ। भारत जैसे उपनिवेशों में भी सरकार के विरुद्ध राष्ट्रवादी आंदोलन तेज़ हो गए। इसी समय महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत में व्यापक असहयोग आंदोलन शुरू हुआ था।

YFRE83

ऐसे आंदोलनों के दबाव के कारण सरकारों व अर्थशास्त्रियों ने पुराने सिद्धांतों की जगह नए सिद्धांत विकसित किए। पहले यह माना जाता था कि सरकारों को अर्थव्यवस्था में दखल नहीं देना चाहिए और उसे अनियंत्रित बाज़ार पर छोड़ देना चाहिए। अब सभी यह स्वीकार करने लगे कि सरकारों को हस्तक्षेप करना चाहिए और अपने देश के उद्योग और कृषि के हितों की रक्षा में विदेशों से आयात को नियंत्रित करना चाहिए और ज़रूरत पड़ने पर किसानों को अनुदान और मज़दूरों को रोज़गार की व्यवस्था करनी चाहिए। जॉन कीन्स नामक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ने कहा कि मंदी के दौर में राज्य को लोक कल्याणकारी योजनाओं पर खर्च करना चाहिए और सबके लिए रोज़गार उपलब्ध ा कराना चाहिए। इससे लोगों की बाज़ार में चीज़ें खरीदने की क्षमता बनेगी और माँग फिर से मज़बूत होगी। इस प्रकार राज्य द्वारा उत्पन्न माँग से आर्थिक स्थिति को सुधारने के अवसर प्राप्त होंगे।

फ्रांक्लिन रूजवेल्ट 1933 में अमेरिका का नया राष्ट्रपति बना। उसने ''न्यू डील'' की घोषणा की जिसमें आर्थिक मंदी से ग्रसित लोगों को राहत, वित्तीय संस्थाओं में सुधार तथा शासकीय निर्माण कार्य द्वारा आर्थिक स्थिति को सुधारने का वचन दिया गया। इसका वास्तविक असर द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ होने के साथ 1939 के बाद आया जब सरकार पर युद्ध के हथियार बनाने तथा सेना की ज़िम्मेदारी आई। इससे कारखानों में उत्पादन बढ़ा और कृषि सामग्रियों की माँग भी बढ़ गई। इस दौरान अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा योजना लागू की गई जिसके अंतर्गत सभी सेवानिवृत्त वृद्धों के लिए एक पेंशन योजना बनाई गई। बेरोज़गारी बीमा तथा विकलांगों और ज़रूरतमंद बच्चों के लिए (जिनके पिता न हों) कल्याणकारी योजनाएँ बनाई गईं।

चित्र 8.14 : फ्रांक्लिन रूजवेल्ट – संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति 1933–1945

असल में मंदी के दौर से भी पहले ही जर्मनी और ब्रिटेन ने इस दिशा में कदम उठाया था। दूसरे विश्व युद्ध के बाद अमेरिका ने दूसरी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं, जैसे बीमार लोगों के लिए स्वास्थ्य संबंधी और शिशु सुरक्षा संबंधी योजनाएँ भी बनाईं। यह एक

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर आधारित थी। जिसमें राज्य सभी नागरिकों को एक अच्छे जीवन का आश्वासन दे और उनकी सभी मौलिक आवश्यकताओं, जैसे– अन्न, आवास, स्वास्थ्य, बच्चों और वृद्धों की देखभाल तथा शिक्षा का ख्याल रखे। राज्य ने योग्य नागरिकों को रोज़गार दिलाने का भार भी अपने ऊपर लिया। इस प्रकार राज्य ने पूँजीवादी बाज़ार में हो रहे उतार–चढ़ाव के प्रभाव को कम करने का प्रयत्न किया। सरकारों के इन कल्याणकारी कार्यों के लिए धन ऊँचे करों से प्राप्त किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बहुत–सी सरकारों ने इस नीति को अपनाया।

वास्तव में भीषण मंदी 1939 में समाप्त हुई जब दूसरा विश्व युद्ध प्रारंभ हुआ। सभी देश की सरकारों ने युद्ध सामग्री की माँग की और उसके लिए पूँजी की व्यवस्था भी की। इन उद्योगों में बहुत लोगों को रोज़गार मिला। साथ ही लाखों को सेना में भर्ती किया गया। इस प्रकार ये देश मंदी के असर से उबर पाए।

सरकारी खर्च से बाज़ार में सामानों के लिए माँग किस तरह बढ़ सकती थी?

अपने आसपास क्या आपने इस तरह की कोई लोककल्याणकारी योजना देखी है? अगर हाँ, तो कक्षा में उसके बारे में बताएँ।

कई अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि सरकारी मदद के कारण लोग सरकार पर निर्भर हो जाएँगे और स्वयं प्रयास नहीं करेंगे, अतः सरकार को लोक कल्याण के कामों में नहीं पड़ना चाहिए। क्या आपको यह ठीक लगता है?

क्या आपको लगता है युद्ध करना एक आर्थिक ज़रूरत थी?

अभ्यास

1. इन प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें :
   क. तुर्की में लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्ष शासन किसने स्थापित किया?
   ख. रूस में किसानों की दासता कब और किसने समाप्त किया?
   ग. रूस में औद्योगीकरण की पहल किसने की?
   घ. 1905 में स्थापित डूमा में किन लोगों का बोलबाला था?
   च. 1917 में रूस के किसानों, मजदूरों व सैनिकों की क्या प्रमुख मांगें थीं?
   ज. लेनिन का 'जमीन संबंधित ऐलान' में क्या कहा गया?
2. रूस में 1861 से 1940 के बीच किसानों की स्थिति में क्या–क्या परिवर्तन आए?
3. डूमा एक सफल लोकतांत्रिक संसद क्यों नहीं बन पायी – इसके कारणों का विश्लेषण कीजिए।
4. रूस की क्रांतिकारी सरकार के प्रमुख कदम क्या–क्या थे?
5. रूस में औद्योगीकरण के लिए किस प्रकार धन जुटाया गया?
6. रूस में 1905 से 1940 के बीच लोकतंत्र के विकास की समीक्षा कीजिए।
7. आर्थिक मंदी के दौर में वस्तुओं की कीमतें क्यों घटीं? इसका उद्योगों पर क्या प्रभाव पड़ा?
8. क्या मंदी का किसानों व मजदूरों पर एक जैसा प्रभाव पड़ा?
9. अमेरिकी आर्थिक मंदी का पूरे विश्व पर प्रभाव क्यों पड़ा?
10. ब्रिटेन और अमेरिका में कल्याणकारी राज्य की क्या भूमिका बनी?